इस पहल को इंडिया फाउंडेशन ऑफ़ दी आर्ट्स के प्रोजेक्ट 560 प्रोग्राम के तहत समर्थन मिला है।

बेवरू

नवंबर 2019, बैंगलोर
5 रुपये

प्यार, इज़्ज़त, संघर्ष

Vol. 3

घरेलु मज़दूर, सेक्स वर्कर, सफाई कर्मचारी और कपड़ा फैक्ट्री की यूनियन और संगठन के साथ

लेबर के खिलाफ कानून

मोदी सरकार की एक मत्वपूर्ण पहल रही है भारत के मौजूदा लेबर कानून और नियम में परिवर्तन करना। 44 अलग--अलग लेबर कानून को सरकार 4 तरह के "सरल" लेबर कोड़ में बदलना चाहती है- वेतन, व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और काम करने की स्थिति, सामाजिक सुरक्षा और औद्योगिक संबंध।

राष्ट्रिय स्वयं सेवक संघ समर्थित यूनियन भारतीय मज़दूर संघ ने भी इस लेबर कोड़ का वैचारिक रूप से विरोध किया है। इस लेबर कोड़ की सबसे बड़ी समस्या है कि कुछ ख़ास सामाजिक सुरक्षा के उपाय जैसे कि कर्मचारी राज्य बीमा (ESI) और कर्मचारी भविष्य निधि (EPF) आदि को हटा कर एक केंद्रीकृत निधि बनाने का प्रस्ताव है। सरकार सारे सामाजिक सुरक्षा के उपायों का निजीकरण करने का भी विचार कर रही है। इसका मतलब ये है कि मज़दूरों के कल्याण के लिए जो पैसा है, निजी संस्थान ज़्यादा-से-ज़्यादा मुनाफा कमाने के लिए उसे दाव पर लगा सकते हैं।

ऐसा लगता है कि लेबर कानून में बदलाव मालिक और काम देनेवालों को खुश करने के लिए किए जा रहे हैं। ये लोग तो लंबे अरसे से कह ही रहे हैं कि भारत में व्यापार करना बहुत पेचीदा है। उदाहरण के लिए, यहाँ कोई भी व्यापार शुरू करने के लिए अलग-अलग तरह के पंजीकरण की ज़रूरत पड़ती है। और फिर अगर काम देनेवालों पर किसी भी तरह के लेबर कानून को तोड़ने का आरोप लगता है तो लेबर विभाग के पास वहाँ निरक्षण करने की ताकत है। चार नए लेबर कोड़ की वजह से ये मुमकिन है कि व्यापारियों के लिए व्यापार करना आसान हो जाएगा। लेकिन व्यापरियों को बिना कोई सामाजिक सुरक्षा या काम की सुरक्षा दिये मज़दूरों को काम पर रखना और हटाना भी उतना ही आसान हो जाएगा।

एक सुरक्शित काम का माहौल देने की आवश्यकता कम हो जाएगी। मज़दूरों के हड़ताल करने के अधिकार पर भी प्रतिबंध लग सकता है। भारत में लगभग 70 प्रतिशत लेबर मज़दूर है नाकि कर्मचारी। इसका मतलब है कि मज़दूरों को ESI या EPF नहीं मिलता। अनुबंध श्रम अधिनियम 1970 के तहत अगर किसी ने 240 दिन से ज़्यादा एक ठेका मज़दूर की तरह काम किया है तो उनको एक नियमित कर्मचारी का ओहदा देना ही होगा। नयी श्रेणी 'निश्चित अवधि के कर्मचारी' के आने के बाद ये बंद हो जाएगा। इस नयी श्रेणी के अनुसार नियमित रोजगार के विचार को हटा देने की कोशिश है जिससे कि काम देनेवालों को काम की सुरक्षा देने की चिंता ही ना करनी पड़े। बेशक, व्यापारियों के पास पुराने नियमों को भी ना लागू करने के कई रचनात्मक तरीके हैं। नए लेबर कोड़ में ये बुनियादी सुरक्षा भी हटा दी जाएगी।

फिलहाल केन्द्रीय सरकार ने न्यूनतम मज़दूरी दर को 336 रूपय रखा है (ऊपर से मुद्रास्फीति के हिसाब से इसमे थोड़ा फेर--बदल हो सकता है)। और राज्य सरकार अपना न्यूनतम मज़दूरी दर रख सकती है बस वो केन्द्रीय सरकार के द्वारा रखे गए दर से ज़्यादा होना चाहिए। वेतन के बारे में जो नया कोड़ है वो न्यूनतम मज़दूरी के बारे में बहुत कम बात करता है। बहुत कम प्रावधान हैं न्यूनतम मज़दूरी दर तय करने के लिए। जब इस वक़्त भारत का अधिकांश लेबर असंगठित क्षेत्र में है बिना किसी काम या सामाजिक सुरक्षा के, इसमे कोई शक नहीं न्यूनतम मज़दूरी दर और नीचे ही जाने वाला है। और आखिरी में, नए श्रम कोड़ के तहत राज्य सरकार ये फैसला ले सकती है कि एक काम का दिन कितना लंबा होगा। आम तौर पर एक काम का दिन 8 घंटे लंबा माना जाता है, लेकिन नए श्रम कोड़ के अंदर, राज्य सरकार अपने हिसाब से एक काम के दिन का समय तय कर सकती है।

ऐसा लगता है कि सरकार काम देनेवालों और मज़दूरों के बीच फासला और बढ़ाना चाहती है और इसका बुरा असर उन सभी लोगों पर पड़ेगा जो रोज़-रोटी कमाने के लिए काम करते हैं। सभी केंद्रीय व्यापार संघों ने इस नए लेबर कोड़ का विरोध किया है लेकिन अभी तक सरकार ने इसकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया है। अभी तक ये नया कोड़ लागू नहीं हुआ है। इस समय सबसे ज़रूरी है कि मज़दूर और कर्मचारी साथ आकर संघर्ष करें और सरकार के सामने अपनी मांगें रखें।

यहाँ, वहाँ और हर जगह

बस्ती के अंदर जाते ही आपको तेज़ सरसों के तेल की खुशबू आती है। चाय की दुकान के पास कुछ नौजवान इखट्ठे होकर कैरम बोर्ड खेलते हैं। आप बस्ती में जहां भी जाएंगे कानो में थोड़ी-थोड़ी बंगाली की आवाज़ आती रहेगी। ऐसा लगता है शायद ये बंगाल ही है, पर है नहीं। ये है थुबाराहल्ली बस्ती। ये घर है दस हज़ार से भी ज़्यादा प्रवासी मज़दूरों का जो बंगाल और बांगलादेश से बैंगलोर आए हैं एक बहतर ज़िंदगी की तलाश में।

"घर पर हमारे पास सिर्फ खेत हैं। वहाँ कुछ पैसा नहीं है। यहाँ हम कम-से-कम पैसा कमा सकते हैं।"

थुबाराहल्ली बस्ती एक खुले मैदान के बीच है जिसके चारों तरफ बड़े-बड़े गेट वाली ऊंची इमारतों में लोग रहते हैं। इन क़ायदे से बनी और साफ-सुथरी इमारतों से 100 मिटर की दूरी पर ऐसा दिखायी देता है जैसे कि एक लोहे की चादर बिछी हुई हो। यहाँ एक कमरे के घर एक-दूसरे से सटे हुए हैं जहां सिर्फ कच्चे रास्ते से ही पहुंचा जा सकता है। यहाँ सरसों के तेल की खुशबू का मुक़ाबला कूड़े के ढेर की बू के साथ होता है जो बस्ती में थोड़ी-थोड़ी दूर पर दिखाई देते रहते हैं। शहरभर का और इन ऊंची इमारतों से निकला हुआ कूड़ा, इसी बस्ती में इखट्ठा होता और छांटा जाता है। यहाँ पर हर किसी के पास बिजली, पानी और शौचालय की सुविधा नहीं है। बस्ती में पानी हफ्ते में एक दिन बड़े-बड़े टैंकर के ज़रिये आता है। बस्ती के कुछ हिस्सों में रात को पूरा अंधेरा हो जाता है क्योंकि यहाँ बिजली हर जगह नहीं है। शहर में आकर काम करने की वजह से पैसे कमाने के कुछ मौके तो मिले हैं लेकिन अभी भी न्यूनतम जीवन स्तर तक पहुँचना बहुत दूर की बात है।

"हमारे पास बिजली या पानी नहीं है। हमारे बच्चे यहाँ छिपकली की तरह मरते हैं।"
बस्ती और आसपास के अपार्टमेंट चाहे दिखने में अलग हों लेकिन उनमे रहने वाले लोग एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। ये ऊंची इमारतें उन्ही हाथों ने बनायीं हैं जो इस पड़ोस की बस्ती में रहते हैं। इन ऊंची इमारतों में रहने वाले लोग बस्ती की औरतों को अपने घर की सफाई के लिए, परिवार का ध्यान रखने के लिए काम पर रखते हैं, और बस्ती के आदमी पड़ोस के स्कूल में बस चलाने का काम करते हैं या कूड़ा उठाते हैं या फिर दिहाड़ी मज़दूर की तरह काम करते हैं। प्रवासी मज़दूर ज़्यादातर वो काम करते हैं जो कोई और नहीं करना चाहता। अगर वो नहीं करेंगे तो फिर और कौन इन ऊंची इमारतों में खाना बनाएगा और सफाई करेगा। कौन ये इमारतें बनाएगा? कूड़ा कौन उठाएगा और अपने हाथों से छांटेगा? चाहे वो इस इलाके के सक्रिय और महत्वपूर्ण सदस्य क्यों ना हों, लेकिन उनके साथ कभी ऐसे पेश नहीं आया जाएगा और नाही उनको कभी ऐसा महसूस कराया जाएगा।
"हम हैं जो उनका पूरा घर व्यवस्थित रखते हैं, उनका घर हमारी वजह से चलता है। वो लोग सिर्फ मेज़ पर बैठ कर खाते हैं और हमे डाँटते हैं।"

बस्ती में औरतें पूरा दिन काम करती हैं, उनका दिन शुरू होता है सुबह 4 बजे और रात को वो 10 बजे तक ही घर वापिस लौट पाती हैं। कई घरों में खाना बनाकर या सफाई कर के वो महीने का 2000 से 5000 रूपय तक कमाती हैं। अगर उनके

'बेवरू' समर्पित है बैंगलोर के मज़दूरों की आवाज़, नज़रिया और अनुभवों के लिए। ये अखबार खासकर असंगठित मज़दूरों के लिए है। ये अखबार का पहला प्रकाशन है। आपको ये अखबार कैसा लगा हमे ज़रूर बताइये। कोई सुझाव या सवाल हों तो वो भी हम तक पहुंचाइए। अगर आप कविता, गाना, मज़दूरों के बारे में लिखते हैं तो हमारे साथ बाटें। और जानकरी के लिए आप हमे लिखकर भेज सकते हैं- bevarupaseena@gmail.com या फोन कर सकते हैं 6366646052

हिन्दी अनुवाद- अनुषी अग्रवाल, एकता. एम
कन्नड़ा अनुवाद - प्रतिभा. आर, महिमा गौड़ा
डिज़ाइन और चित्र - जयसिम्हा. सी

सारे लेख मरा टीम के द्वारा मज़दूरों के साथ चर्चा करके लिखे गए हैं।

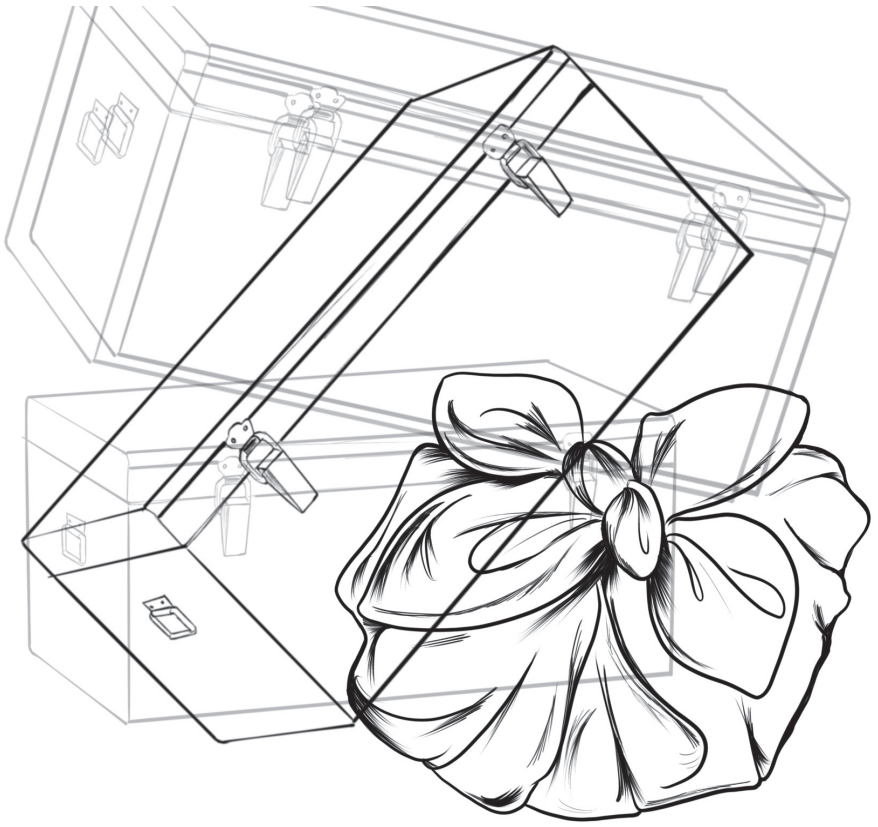

मालिक अच्छे हैं तो उन्हे महीने में दो दिन की छुट्टी दे देते हैं। पर ज़्यादातर तो काम पर रोज़ ही जाना पड़ता है चाहे तबीयत खराब हो या फिर परिवार में किसी की मौत ही क्यों ना हुई हो।

"हम काम पर सुबह तीन घंटे जाते हैं, दोपहर का खाना बनाने के लिए और फिर शाम को जाते हैं रात का खाना बनाने के लिए। अगर हम थोड़ी देर भी आराम से बैठते हैं तो डांट पड़ती है कि कामचोरी करते हैं। अगर हम पानी मांगते हैं तो वो मना कर देते हैं। अगर हम पार्क में थोड़ी देर बैठते हैं तो वो हमे वहाँ से भगा देते हैं।"

यहाँ पर औरतें सबसे ज़्यादा खतरे में हैं। घरों में सफाई का काम करने वाली औरतों ने बताया उन्हे काम पर किस तरह यौन और मौखिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है और धमकी दी जाती है कि अगर किसी को बताया तो उन पर चोरी का इल्ज़ाम लगाकर काम से निकाल दिया जाएगा। काम से अगर देर से छूटते हैं तो उन्हे थोड़ी-सी दूर जाने के लिए भी अपने पति का इंतज़ार करना पड़ता है क्योंकि रास्ते में छेड़छाड़ का डर हमेशा लगा रहता है। बस्ती में भी सुरक्षित महसूस नहीं होता है। अगस्त 2017 में एक औरत को घर के अंदर ही धर दबोचा था उसका अपहरण करने के इरादे से। पड़ोस की एक महिला ने उसकी चीखने की आवाज़ सुनी और उसे बचाया। बस्ती में अपहरण, बलात्कार, छेड़छाड़ बहुत आम बात है लेकिन इसके बावजूद पुलिस की तरफ से कभी कोई प्रतिक्रीया या मदद नहीं मिली है। बस्ती के लोग स्थानीय भाषा नहीं बोल सकते और नाही उनके पास यहाँ कोई सामाजिक और राजनीतिक ताकत है जिसकी वजह से उनकी सुनवाई मुश्किल से ही हो पाती है।

पुलिस, राजनेता और स्थानीय जनता, सभी प्रवासी मज़दूर के साथ एक बाहरवाले की तरह पेश आते हैं। पुलिस बार-बार प्रवासी मज़दूरों को जांच-पड़ताल के लिए परेशान करती है। चाहे वो भारतीय नागरिक हों या विदेशी, वो समाज का एक कमज़ोर तबका हैं जो लगातार इस डर में रहता है कि उनका घर और उनकी रोज़ी-रोटी न जाने उनसे कब और किस तरह छीन ली जाए। और इस डर का पुलिस गलत इस्तेमाल करती है, उनसे पैसे हड़पने के लिए। दिसम्बर 2018 में स्थानीय विधायक, अरविंद लिम्बावल्ली, ने बस्ती खाली करने का नोटिस भी जारी किया था ये कह कर कि बस्ती में रहने वाले लोग सुरक्षा के लिए एक खतरा हैं क्योंकि वो बांगलादेश से आए हुए मुसलमान हैं। 'सुरक्षा के लिए खतरा' यहाँ उन्ही लोगों को कहा जा रहा है जो पिछले 15 साल से इस महौले में इन ऊंची इमारतों के बीच रहे हैं और वो ज़रूरी काम करते हैं जो समाज में कोई और नहीं करना चाहता। 2017 में बशीर-उल-शेख़, जो बस्ती का निवासी है, उसे पड़ोस के स्थानीय लोगों द्वारा मार डाला गया था। उसके ऊपर इल्ज़ाम था कि वो एक प्रवासी है और बिजली के तार चुराता है। उसके शरीर को उन्ही बिजली के तारों से लपेट कर जला दिया था जो कहते थे कि उसने चुराये हैं।

बस्ती में ज़्यादातर बंगाली प्रवासी मुसलमान हैं, जिसकी वजह से उन्हे और दिक्कत होती है। देशभर में मुसलमानों को इस वक़्त तरह-तरह की हिंसा का सामना करना पड़ रहा है और ऐसा लगता है कि सरकारी नीति भी उन्हे उनके घर से बाहर निकलाने पर तुली है। भारत सरकार ने अवैध आप्रवासियों को वापिस भेजने के लिए राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) को अपडेट करने की प्रक्रिया शुरू की है। बंगाल के पास के राज्य, आसाम में एनआरसी का इस्तेमाल हो रहा है मुसलमानों को निशाना बनाने के लिए। इस प्रक्रिया के तहत जिन लोगों को अवैध घोषित किया गया है उसमे से एक बड़ी संख्या मुसलमान की है। एनआरसी अब बैंगलोर पहुँच चुका है। प्रवासी मुसलमान मज़दूरों के घर एक बार फिर खतरे में हैं। बस्ती में प्रवासी मुसलमान के साथ बुरा व्यवहार होता है, उसे परेशान किया जाता है, उसका अपमान होता है और ज़बरदस्ती उसे बाहरवाला बनाया जाता है। प्रवासी मुसलमान इस बस्ती में पिछले 15 साल से रह रहे हैं। वो शहर का कचरा उठा कर उसे छाँटते हैं, जिस सड़क पर हम चलते हैं उसे साफ करते हैं, लोगों के घर बनाते हैं, उनके घर साफ करते हैं और उनके बच्चों की देख-रेख करते हैं। वो इस शहर में अपना योगदान कर रहे हैं। उनकी रोज़ी-रोटी, उनका घर और उनकी गरिमा, सब कुछ दाव पर नहीं लग सकता इस गलत धारणा के आधार पर कि वो बाहरवाले हैं।

***अक्टूबर 27, 2019 को (इस लेख के लिखे जाने के बाद) बैंगलोर में 29 आदमी, 22 औरतें और 9 बच्चों को गिरफ्तार किया गया इस आधार पर कि वो अवैध बांग्लादेशी प्रवासी हैं। ये वही लोग हैं जो सालों से सड़कें, कूड़ा, घर साफ कर रहे हैं और उनके बच्चों की देख-रेख करते हैं। हम इन गिरफ्तारियों के खिलाफ हैं और उनके साथ खड़े होते हैं जिनको गिरफ्तार किया गया है।**

ये हमारी भी जगह है

"एक बार जब उन्होने काम करना बंद कर दिया था, खाली बैठे हुए उनका दिमाग खराब हो गया था। किसी तरह वो बहतर हुए और काम पर वापिस लौटे। ऐसा लगता है कि उनके काम की वजह से ही वो ठीक रहते हैं। लेकिन अब फिर उनके पास नौकरी नहीं है," मीना, जो एक पावराकारमिका है, उसने बताया अपने पिता, शशिकुमार, के बारे में जिन्हे अपनी बीस साल लंबी पावराकारमिका की नौकरी से निकाला गया है।

शशिकुमार (60 साल) लॉरी में कूड़ा इखट्ठा करने का काम करते थे। उन्होने 50 रूपय की तनख़्वाह से बैंगलोर में काम करना शुरू किया था। पिछले कुछ बीस सालों में, बहतर वेतन के लिए विरोध करने के बाद उनकी तनख़्वाह 13000 रूपय तक हुई। अचानक उन लोगों ने उन्हे काम पर आने से मना कर दिया और साथ ही उनकी पिछले दो महीने की तनख़्वाह भी बाकी है।

"अगर हमारे माँ-बाप काम करना बंद कर देंगे तो उनके बच्चों को तो नौकरी मिलनी चाहिए, वरना कैसे जिएंगे हम," मीना का पूछना है।

क्योंकि अब ज़्यादातर ठेके पर ही लोगों को काम पर रखा जाता है और उससे होने वाले शोषण की वजह से पावराकारमिका को हर एक छोटी बात के लिए लड़ना पड़ता है, उनके वेतन से लेकर काम की गरिमा तक। जनवरी 2018 में उन पावराकारमिका को काम से हटा दिया गया जिन्होने एक साल से कम काम किया है। मई 2019 से उन पावराकारमिका को बिना किसी नोटिस के काम से हटाया गया जिनकी उम्र 60 साल से ज़्यादा है। उन्हे न तो कोई PF (भविष्य निधि) मिली नाही कोई और सेवानिवृत्ति के बाद की सुविधाएं। अब इस नौकरी के लिए आवेदन देने के लिए भी 45 साल की उम्र सीमा लगायी गयी है। इसका मतलब है कि जिन पावराकारमिका ने 20-30 साल काम किया है वो इस नौकरी के लिए आवेदन दे ही नहीं सकते।

होटल और घरों से जो कूड़ा निकलता है शशिकुमार उसे साफ करता है, 8 घंटे गंदगी के साथ काम करने के बाद, शराब मदद करती उसे भूलने के लिए जो दिनभर उसने देखा, सुना और सूंघा। आज वो कूड़े के ढ़ेर से प्लास्टिक और टिन के डब्बे उठा कर बेचता है और 100 रूपय कमाता है। मीना का मानना है कि *"उन्हे आत्मनिर्भर होना पसंद है। उन्हे अपनी शराब और खाने के लिए किसी के सामने हाथ फैलाना पसंद नहीं। वो ये काम करते हैं ताकि वो अपना खर्चा खुद उठा सकें"*।

इतने सालों से ईमानदारी से काम करने का मतलब ही क्या है? उन्हे पेंशन नहीं मिलती, सेवानिवृत्ति पर कोई लाभ नहीं मिलता, बच्चों की पढ़ाई या नौकरी के लिए कोई मदद नहीं है। मीना के परिवार की चार पीढ़ियों ने बैंगलोर में पावराकारमिका का काम किया है।

मीना का पूछना है, *"क्या हम सरकार के ग़ुलाम हैं? क्यों हम पीढ़ी-दर-पीढ़ी ये शहर साफ करते आ रहे हैं, अपने माँ-बाप को इस हालत में देखने के लिए? ये पैसे का मामला नहीं है, यहाँ सवाल हमारी गरिमा का है। हमने इतने साल महनत से काम किया है और अब हम क्या इज़्ज़त कमाने के लिए काम करें? क्या हमारा भविष्य भी हमारे माँ-बाप जैसा ही होगा?"*

शहर में पावराकारमिका एक मज़बूत महिला संघठन है। और वो जो भी जगह साफ करती हैं उसको अपना ही मानती हैं। उन्हे घर पर बैठने की आदत नहीं है। उन्हे अपने काम से बहुत लगाव है। जीवन भीमा-नगर में छंटनी के दौरान 11 औरतों को एक ही रात में काम से हटा दिया गया था। *"उसमे से एक का दिमागी संतुलन बिगड़ गया है। एक ने दूसरों के घरों में काम ढूँढने की कोशिश की, मगर क्योंकि वो पहले सड़क का कूड़ा साफ करती थी इसलिए उसे अब कोई भी घर की सफाई के काम के लिए नहीं रखना चाहता। वो भी अब कूड़े के ढ़ेर से कचरा उठाने का काम करती है। बाकी औरतों ने भी उसके साथ ये काम करना शुरू कर दिया है। वो बिना काम के एक दिन की भी कल्पना नहीं कर सकते। ये हमारी भी जगह है, हमारा भी इस पर अधिकार है,"* मीना गुस्से में कहती है।

मीना आज डेंगू के बुख़ार से परेशान है। *"अगर मैं छुट्टी लूँगी तो मेरी तनख़्वाह कट जाएगी। मुझे कम-से-कम 15 दिन तो लगेंगे पूरी तरह ठीक होने में। अगर मुझे 13000 रूपय तनख़्वाह मिलती है तो फिर सिर्फ 7500 रूपय ही मिलेंगे। इसमे मै बिजली, पानी का बिल और स्कूल की फीस कैसे भरूँगी?"* मीना इस वक़्त काम पर है। उसने खाना नहीं खाया है नाही कोई दवाई ली है। *"आज मेरे पिताजी साथ आए हैं काम पर क्योंकि मेरी तबीयत ठीक नहीं है,"* उसने अपने पिताजी को मुसकुराते हुए देखा जो कूड़े की एक बड़ी सी गाड़ी को धक्का दे रहे थे।

एक भी पावराकारमिका ने कभी स्थायी नौकरी के लिए आवेदन नहीं दिया है। *"सरकार को क्या लगता है कि हमारे पास जाति, आमदनी और स्कूल के प्रमाण पत्र हैं? क्या हमारे पास स्थायी पते हैं? तो फिर ये स्थायी नौकरियाँ किसके लिए हैं?"* उसने तय किया है कि वो अपने पिता और दोस्तों की तरफ से लेबर कोर्ट (श्रम न्यायालय) में एक केस दर्ज करेगी, *"हमे जवाब देने के बाद, वो मजदूरों को स्थायी नौकरी दे सकते हैं"*।

ढेर सारी साड़ियाँ

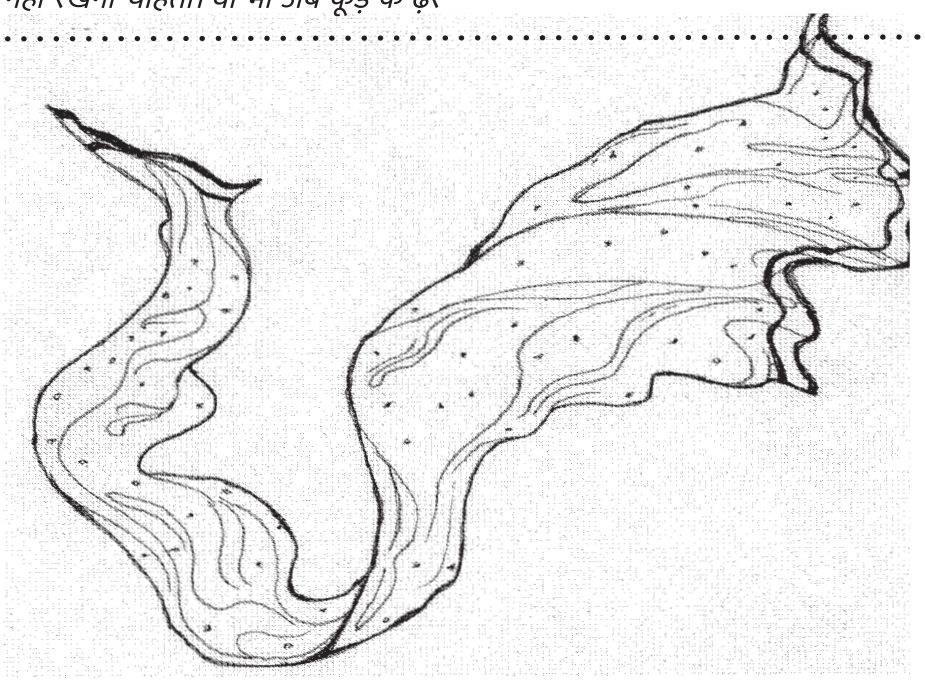

वो बिस्तर से उठ कर अपना नाइट गाउन ठीक करती है। मम्मी, अम्मा, माँ। वो अपने बच्चों को तैयार कर स्कूल भेजती है। वो एक जिम्मेदार माँ है। वो अपनी साड़ी बदलती है।

उसके बच्चे उससे बहुत प्यार करते हैं। उन्हे लगता है वो किसी दुकान में कुछ बेचने का काम करती है। उसके बच्चे उसका ध्यान रखते हैं, उसकी चिंता करते हैं। वो अपनी दिनभर की थकान छुपा लेती है। उसके बच्चों ने उससे कभी सवाल नहीं किया। वो एक बहुत अच्छी अभिनेत्री है।

वो अपने मेकअप के पीछे छुप जाती है, कोई नहीं देख सकता कि वो असली में कौन है। सड़क से लॉज तक। लॉज से सड़क तक। वो हर तरह का मर्द देखती है। कमरे में जाते-जाते वो अपनी कसकर करी हुई चोटी को धीरे-धीरे खोल देती है। वो अपना काम करती है। उसके दिमाग में उसकी रोज़-रोटी है। वो अपनी साड़ी बदलती है।

ज़्यादातर मर्दों को वो खूबसूरत लगती है। कुछ उसे घर ले जाना चाहते हैं, कुछ शादी करना चाहते हैं और कुछ उसे हासिल करना चाहते हैं। कुछ के लिए वो टाइम पास है। वो किसी को भीतर नहीं आने देती। वो किसी को पता नहीं चलने देती कि रात को उसकी ज़िंदगी कैसी होती है।

जैसे ही वो अपना आखिरी काम करके बाहर निकलती है, उसे ओब्बावा स्कवॉड दिखाई देता है जो शहर की इस तरह की गंदगी साफ करने की कोशिश कर रहा है, बिना ये पहचाने कि वो इतनी डिमांड में है। वो भेड़िये की तरह उसे ढूंढते हैं, और जब वो मिल जाती है तो सबके सामने, भीड़ के बीच उसे नीचा दिखाते हैं। वो इस वक़्त अपने परिवार के बारे में सोच रही है।

वो उसकी सेवाएँ मुफ्त में देने के लिए बोलते हैं।

वो अपना मेकअप साफ करती है। वो थक चुकी है। वो घर की तरफ तेज़ी से चलती है ताकि समय पर पहुँच कर बच्चों के लिए रात का खाना बना सके। वो रात को उन्हे सुलाती है। वो देखती है अपनी चुड़ियाँ और मंगलसूत्र। चुपचाप, वो मुस्कुराती है। अभी उसके दिमाग में उसके सपने चल रहे हैं।

वो सुबह उठती है और फिर से अपनी साड़ी बदलती है।

प्रवेश वर्जित है

“शेर के दहाड़ने जैसी आवाज़ आती है। और बिना किसी रोक के वो बढ़ती ही जाती है।” *गारमेंट फ़ैक्टरी में काम करने वाले एक मज़दूर ने फ़ैक्टरी में होने वाले शोर के बारे में बताते हुए कहा।

फ़ैक्टरी में काम करने के लिए शहर के बाहर जाना पड़ता है। मेट्रो तो बहुत महंगी पड़ती है, इसलिए ज़्यादातर हम बस लेते हैं। हम में से कुछ लोगों को तो दो घंटे लग जाते हैं फ़ैक्टरी आने-जाने में।

सारी फ़ैक्टरियां एक लाइन से लगी होती है, तीन-चार माले ऊंची, सबकी खिड़कियाँ बंद। फ़ैक्टरी के चारों तरफ एक दीवार होती है जिस पर चमकता हुआ काँटेदार तार लगा होता है। फ़ैक्टरी में अंदर जाने से पहले, गेट पर हमे तारीख़ और समय दर्ज करना होता है। अगर नहीं करेंगे तो पगार कटने का डर लगा रहता है।

बड़े से हॉल में जैसे ही घुसते हैं, सबसे पहले ट्यूब-लाइट की सफ़ेद लाइट आँखों में चुभती है। पूरा कमरा ही सफ़ेद दिखता है, सूरज की रोशनी के लिए यहाँ कोई जगह नहीं। नाही किसी हवा के लिए यहाँ कोई जगह है, हमारी नाक में हमेशा बू बसी रहती है सुई, बटन, ज़िप्पर, चेन और कैंची की। धीरे-धीरे आँखों को सफ़ेद लाइट की आदत होती है तो हॉल में डेस्क की लंबी-लंबी लाइने दिखाई देती हैं। बीस डेस्क एक लाइन में और ऐसी पचास लाइने। सर झुके होते हैं सिलाई मशीन पर, नाप लेते हुए, ठीक करते हुए, काटते हुए, चिपकाते हुए, रफ़ू करते हुए, टाकते हुए। यहाँ हाथ बहुत तेज़ी से काम करते हैं, सरसराता हुआ कपड़ा पहुँच जाता है लाइन के अंत में जहां उसे प्लास्टिक के पैकेट में सफाई से बंद कर दिया जाता है। एक सूपर्वाइज़र होता है जो इन सब पर नज़र रखता है। चाहे वो पूरे समय दिखाई ना दे, पर सुनाई हर वक़्त देता है। उसकी आवाज़ एक भोंपू की तरह है। वो डेस्क की लाइनों के बीच घूमता है, चिल्लाता हुआ, थप्पड़ मारता हुआ, अपमान करता हुआ, गंदी तरह से घूरता हुआ। फ़ैक्टरी में गलती करने की कोई जगह ही नही है। यहाँ शरीर एक मशीन है।

सुबह 9 बजे से शाम के 6 बजे तक गर्दन में दर्द हो जाता है। बगल में पसीना आता है, हाथ पर छाले पड़ जाते हैं और जोड़ों में दर्द होता है। यहाँ समय ही पैसा है, बाथरूम जाने की भी कीमत है। हम सीख जाते हैं बिना बाथरूम जाए लगातार काम करने का तरीका। जैसे-जैसे उत्पादन का लक्ष्य लंच टाइम और चाय के वक़्त को खा जाता है, पेट भी भूख से दोस्ती कर लेता है। ओवरटाइम करने से कोई पगार नहीं बढ़ती, मिलता है तो सिर्फ आधा पका खाना और बच्चों के साथ बिताने के लिए कोई वक़्त नहीं। इससे तो किसी का भी मन खराब हो जाए।

एकाग्रता। जिससे की बटन ठीक से टके, चेन कहीं ना अटके और कपड़े पर कोई शिकन ना आए। हम इतनी एकाग्रता से काम करते हैं कि ब्लाउज़ के अंदर जाते हुए हाथ को भी नज़र-अंदाज़ कर देते हैं, हम पर पड़ती बुरी नज़र और गलती से छाती को छूते हुए हाथ को अनदेखा कर देते हैं। कुछ कहते हैं कि ये सब तो काम का एक हिस्सा है। किसी भी तरह की शिकायत को HR विभाग द्वारा शांत कर दिया जाता है। उसको अस्वीकार कर दिया जाता है और फिर कोई ज़्यादा शोर नहीं मचाता क्योंकि कोई भी अपना काम छूट जाने का जोख़िम आखिर क्यों उठाएगा?

हम इतनी महनत और एकाग्रता से जो कपड़े बनाते हैं वो बाज़ार में हमारी मज़दूरी से दुगने, तिगुने पैसों में बिकता है। वो शीशे की खिड़की में लगाए जाते हैं, पुतलों को पहनाए जाते हैं, ऐसे देशों में जहां हम कभी नहीं जा सकते। हमारी बीमारी और सेहत में, हमारी उतनी ही कीमत है जितना हम उत्पादन कर सकते हैं। एक घड़ी की तरह, हमारा दिन गुज़रता है गालियों, दर्द और चुप्पी के बीच। ओह, लेकिन अगर हमने उत्पादन का लक्ष्य पूरा किया तो हमे एक केक मिलता है!

इस शहर में हमारे जैसे 1अरब से ज़्यादा मज़दूर हैं। हमारा काम किसी तरह के उत्सव का कारण नहीं बनता और नाही ये किसी प्रकार की प्रगति का संकेत है। शहर की सीमारेखा पर, हम ना दिखाई देने चाहिए और ना सुनाई। इन कंक्रीट की फ़ैक्टरीयों में अंदर छुपकर, हम बस लगातार काम करते हैं।

श्रद्धांजली

काम की तलाश में मज़दूर अपना घर छोड़कर दूर-दूर जाते हैं। वो घर और दफ़्तर की इमारतें बनाते हैं जिसमे वो खुद कभी नहीं रहते। हमारे पाँव तले ज़मीन अब इतनी मज़बूत नहीं रही। अन्याय और असमानता का भार इस नींव को और दबा रहा है। 11 जुलाई को रात 2 बजे बहुत ज़ोर से कुछ गिरने की आवाज़ आयी। बैंगलोर के एक शांतिप्रिय इलाके में भूकम-सा आ गया जब एक आधी-बनी इमारत ढह कर पास वाली एक और इमारत पर जा गिरी और दोनो इमारतें ज़मीन पर आकर टूट पड़ी। शहर में ज़्यादातर निर्माण मज़दूर इन आधी-बनी इमारतों में निर्माण के समान और उपकरणों के बीच ही रहते हैं जहां किसी भी तरह की दुर्घटना से बचने के लिए उनके पास ज़्यादा साधन नहीं होते। उनके बच्चे वहीं खेलते हैं, मिट्टी से, सीमेंट से, पत्थर से और कभी कभी अपने माँ-बाप का काम में हाथ भी बटा देते हैं। एक बार जब वो इमारत पूरी बन जाती है तो वो अपना बोरिया-बिस्तर उठा कर दूसरी इमारत बनाने कहीं और चले जाते हैं।

इस मामले में, ये इमारत मज़दूरों के ऊपर गिरी जब वो सो रहे थे और शायद कुछ सपने भी देख रहे थे। प्रवासी मज़दूर जो ठेके पर काम करते हैं, जिनके पास कोई लिखित में कागज़ात नहीं है, उनकी मौत एक अंजान शहर में एक अज्ञात नागरिक की तरह होती है। ये श्रद्धांजली ऐसे कई मज़दूरों के लिए है जिन्हे अपनी जान गवानी पड़ी क्योंकि हमारे शहर विकसित करने के प्लान में कमी है, और कहीं-न-कहीं मानव जीवन को मूल आधार पर हम सम्मान देने में चूक जाते हैं। शहर में सबका जीवन और उनके अधिकार समान नहीं हैं। हमे शोक है उनके बच्चों के लिए जो अपना बचपन पूरी तरह नहीं जी पाये। हम उन परिवारों के साथ हैं जिन्हे ये भी नहीं पता कि उनके अपनों की कब, कहाँ और किस तरह मौत हुई। एक शहर जो इतनी बेरहम और बेहिसाब मौतों के बल पर खड़ा है उसे कभी-न-कभी इसका नतीजा भुगतना होगा। उन गिरी हुई इमारतों का मलबा आज तक वहीं पड़ा है, और यही प्रमाण है कि शहर को कभी तो इस तरफ देखना ही पड़ेगा।

भीतर की आवाज़

इस अत्याचार के शासन के भीतर
एक औरत की मन की आवाज़ को भी
जकड़ रखा है मर्दांगी की ताकत ने।

एक औरत जो सबको खुश रखने का काम करती है
ये जकड़ने वाली भारी चेन और रस्सियाँ
उसके गहने हैं।

एक मुरझायी हुई औरत का गम यही है
जो वीर्य की प्यास को बुझाती है
उसे एक ऐसी ज़िंदगी चाहिए
जिसमे असीम आज़ादी और समानता हो।

ये मानना बेहद ज़रूरी है कि
सबको छोड़ कर
सड़क पर खड़ा होना
ये तुम्हारे लिए नहीं है
बल्कि इस अजीब-सी दुनिया में
अपनी पहचान संभालाने के लिए है।
चमेली के फूलों की महक के बीच
एक अंजान आदमी की शारीरिक भूख को पूरा करना
औरत का सिर्फ एक एहसान है
उसकी अपनी मर्ज़ी नहीं।

इस पहल को इंडिया फाउंडेशन ऑफ़ दी आर्ट्स के प्रोजेक्ट 560 प्रोग्राम के तहत समर्थन मिला है।